Toppersnotes®
Unleash the topper in you

UGC-NET
हिन्दी साहित्य

NATIONAL TESTING AGENCY (NTA)

पेपर - 2 || भाग - 3

SIERRA INNOVATIONS

इकाई - 5

हिन्दी कविता 1–50

- पृथ्वीराज रासो
- अमीरखुसरो
- विद्यापति की पदावली
- कबीर
- जायसी ग्रंथावली
- सूरदास
- तुलसीदास
- बिहारी सतसई
- घनानन्द कवित्त
- मीरा
- अयोध्या सिंह
- मैथिलीशरण गुप्त
- जयशंकर प्रसाद
- निराला
- सुमित्रानंदन पंत
- महादेवी वर्मा
- रामधारी सिंह दिनकर
- नागार्जुन
- सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय
- भवानीप्रसाद मिश्र
- मुक्तिबोध
- धूमिल

इकाई - 6

हिन्दी उपन्यास 51–89

- पं. गौरीदत्त
- लाला श्रीनिवास दास
- प्रेमचन्द
- अज्ञेय
- हजारी प्रसाद द्विवेदी
- फणीश्वरनाथ रेणु
- यशपाल
- अमृत लाल नागर
- भीष्म साहनी
- श्रीलाल शुक्ल
- कृष्णा सोबती
- मन्नु भंडारी
- जगदीश चन्द्र

इकाई - 7

हिन्दी कहानी 90–112

- राजेन्द्र बाला घोष
- माधवराव सप्रे
- सुभद्रा कुमारी चौहान
- प्रेमचंद
- राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह
- चन्द्रधर शर्मा गुलेरी
- जयशंकर प्रसाद
- जैनेन्द्र
- फणीश्वरनाथ रेणु
- अज्ञेय
- शेखर जोशी

- भीष्म साहनी
- कृष्णा सोबती
- हरिशंकर परसाई
- ज्ञानरंजन
- कमलेश्वर
- निर्मल वर्मा

इकाई - 8

हिन्दी नाटक 113–160

- भारतेन्दु
- ज्यशंकर प्रसाद
- धर्मवीरभारती
- लक्ष्मीनारायण लाल
- मोहन राकेश
- हबीब तनवीर
- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
- शंकरशेष
- उपेन्द्रनाथ अश्क
- मन्नु भंडारी

इकाई - 9

हिन्दी निबंध 161–172

- भारतेन्दु
- बाल कृष्ण भट्ट
- रामचन्द्र शुक्ल
- हजारी प्रसाद द्विवेदी
- विद्यानिवास मिश्र
- अध्यापक पूर्ण सिंह
- कुबेरनाथ राय
- विवेकी राय
- नामवर सिंह

इकाई - 10

आत्मकथा, जीवनी तथा अन्य गद्य विधाएं 173–192

- रामवृक्ष बेनीपुरी
- महादेवी वर्मा
- तुलसीराम
- शिवरानी देवी
- मन्नु भंडारी
- विष्णु प्रभाकर
- हरिवंशराय बच्चन
- रमणिका गुप्ता
- हरिशंकर परसाई
- कृष्ण चन्दर
- दिनकर
- मुक्तिबोध
- राहुल सांकृत्यायन
- अज्ञेय

इकाई – 5

हिंदी कविता : पाठ (टेक्स्ट)

1. रेवा तट (चंदबरदाई)

'रेवा तट' चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' का सत्ताइसवाँ समय (सर्ग) है। इस सर्ग में पृथ्वीराज चौहान के रेवा तट (नर्मदा) के समीप वन में शिकार खेलने जाने तथा वहाँ शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी से युध्द का विस्तुत वर्णन है। 'रेवा तट' पर हुए युद्ध में पृथ्वीराज की विजय होती है, फलस्वरूप मुहम्मद गोरी को बंदी बना लिया जाता है। 'रेवा तट' का मुख्य विष्य पृथ्वीराज और गौरी का युद्ध है तथा इसका प्रधान रस वीर रस है। परिचय हेतु एक उद्धरण दिया जा रहा है-

- देवगिरि जीते सुभट, आयौ जामंड राइ।
  जय जय नृप कीरति सकल, कही कव्विजन गाइ।।
  मिलट राज प्रथिराज सौं कही राव चामंड।
  रेवातट जो मन करौ, (तौ) वन अपुब्ब गज झुंड।।

2. अमीर खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ

मुकरियाँ

- लिपट लिपट के वा के सोई
  छाती से छाती लगा के रोई
  दात से दांत बजे तो ताडा
  ऐ सखि साजन ? ना सखि जाडा!
- रात समय वह मेरे आवे
  भोर भये वह घर उठि जावे
  यह अचरज है सबसे न्यारा
  ऐ सखि साजन ? ना सखि तारा!

बूझ-अनबूझ पहेलियाँ

- गोश्त क्यों न खाया ?
  डोम क्यों न गया ?
  उत्तर-गला न था

- जूता पहना नहीं
  समोसा खाया नहीं
  उत्तर-तला न था

- अनार क्यों न चखा ?
  वजीर क्यों न रखा ?
  उत्तर दाना न था
  (अनार का दाना और दाना = बुद्धिमान)

- सौदागर चे मे बायद ? (सौदागर को क्या चाहिये)
  बूचे (बहरे) को क्या चाहिये ?
  उत्तर- (दो कान भी दुकान भी)

- तिश्नारा चे मे बायद ? (प्यासे को क्या चाहिये)
  मिलाप को क्या चाहिये
  उत्तर- चाह (कुआँ भी और प्यार भी)

- शिकार ब चे मेबायद करद ? (शिकार किस चीज से करना चाहिये)
  कुव्वते मग्ज को क्या चाहिये ? (दिमागी ताकत को बढाने के लिये क्या चाहिये)
  उत्तर- बा-दाम (जाल के साथ) और बादाम

- रोटी जली क्यों ? घोडा अडा क्यों ? पान सडा क्यों ?
  उत्तर- फेरा न था

- पंडित प्यासा क्यों ? गधा उदास क्यों ?
  उत्तर- लोटा न था

- उज्जवल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
  देखत में तो साधु है, पर निपट पाप की खान।।
  उत्तर- बगुला (पक्षी)

- एक नारी के हैं दो बालक, दोनों एकहि रंग।
  एक फिर एक ठाढा रहे, फिर भी दोनों संग।
  उत्तर- चक्की।

- आगे-आगे बहिना आई, पीछे-पीछे भइया।
  दाँत निकाले बाबा आए, बुरका ओढे मइया।।
  उत्तर-भुट्टा

- चार अंगुल का पेड, सवा मन का पत्ता।
  फल लागे अलग अलग, पक जाए इकट्ठा।।
  उत्तर- कुम्हार की चाक

- अचरज बंगला एक बनाया, बाँस न बल्ला बंधन घने।
  ऊपर नींव तले घर छाया, कहे खुसरो घर कैसे बने।।
  उत्तर- बयाँ पंछी का घोंसला

- माटी रौदूँ चक धरूँ, फेरूँ बारम्बार।
  चातुर हो तो जान ले मेरी जात गँवार।।
  उत्तर- कुम्हार

- गोरी सुंदर पालती, केहर काले रंग।
  ग्यारह देवर छोड कर चली जेठ के संग॥
  उत्तर- सुपारी

- बाल नुचे कपडे फटे मोती लिये उतार।
  यह बिपदा कैसी बनी जो नंगी कर दई नार॥
  उत्तर-भुट्टा (छल्ली)

- एक नार कुएँ में रहे,
  वाका नीर खेत में बहे।
  जो कोई वाके नीर को चाखे,
  फिर जीवन की आस न राखे॥
  उत्तर- तलवार

- एक जानवर रंग रंगीला,
  बिना मारे वह रोवे।
  उस के सिर पर तीन तिलाके,
  बिन बताए सोवे॥
  उत्तर-मोर।

- चाम मांस वाके नहीं नेक,
  हाड मांस में वाके छेद।
  मोहि अंचंभो आवत ऐसे,
  वामें जीव बसत है कैसे॥
  उत्तर-पिंजडा

- स्याम बरन की है एक नारी,
  माथे ऊपर लागै प्यारी।
  जो मानस इस अरथ को खोले
  कुत्ते की वह बोली बोले॥
  उत्तर- भौं (भौएँ आँख के ऊपर होती हैं।)

- एक गुनी ने यह गुन कीना,
  हरियल पिंजरे में दे दीना।
  देखा जादूगर का हाल,
  डाले हरा निकाले लाल।
  उत्तर- पान।

- एक थाल मोती से भरा,
  सबसे सर पर औंधा धरा।
  चारों ओर वह थाली फिरे,
  मेती उससे एक न गिरे।
  उत्तर-आसमान

- गोल मटोल और छोटा-मोटा,
  हर दम वह तो जमीं पर लोटा।
  खुसरो कहे नहीं है झूठा,
  जो न बूझे अकिल का खोटा॥
  उत्तर-लोटा

- श्याम बरन और दाँत अनेक,
  लचकत जैसे नारी।
  दोनों हाथ से खुसरो खींचे
  और कहे तु आ री॥
  उत्तर- आरी

- हाड की देही उज रंग,
  लिपटा रहे नारी के संग।
  चोरी की ना खून किया
  वाका सर क्यों काट लिया
  उत्तर- नाखून

- बाला था जब सबको भाया,
  बडा हुआ कुछ काम न आया।
  खुसरो कह दिया उसका नाव,
  अर्थ करो नहीं छोडो गाँव॥
  उत्तर- दिया।

- नारी से तू नर भई और श्याम बरन भई सोय।
  गली-गली कूकत फिरे कोइलो-कोइलो लोय॥
  उत्तर- कोयल।

- एक नार तरवर से उतरी,
  सर पर वाके पाँव
  ऐसी नार कुनार को,
  मैं ना देखन जाँव॥
  उत्तर- मैना।

- सावन भादों बहुत चलत है
  माघ पूस में थारी।
  अमीर खुसरों यूँ कहें
  तु बूझ पहेली मोरी॥

- तरवर से इक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया
  बाप का उससे नाम जो पूछा आधा नाम बताया
  आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी
  अमीर खुसरो यूँ कहें अपना नाम नबोली
  उत्तर- निम्बोली

3. विद्यापति की पदावली (संपादक-डॉ. नरेंद्र झा)

वंदन

नन्दक नन्दक कदम्बक तरु-तर।
धिरे धिरे मुरलि बजाव॥
समय संकेत-निकेतल बइसल।
बेरि बेरि बोलि पठाव॥
सामरि, तोरा लागि।
अनुखन विकल मुरारि॥
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल।
फिरि फिरि ततहि निहारि॥
गोरस बेचए अवइत जाइत।
जनि जनि पुछ बनमारि॥
तोहे मतिमान, सुमति, मधुसूदन।
वचन सुनह किछु मोरा॥
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति।
बन्दह नन्द-किसोरा॥

राधा की वंदना

देख देख राधा रूप अपार।
अपुरूब के बिहि आनि मिलाओल
खिति-तल लावनि-सार
अगहि अंग अनंग मुरछायत ।
हेरए पडए अथीर॥
मनमथ कोटि-मथन करु जे जन।
से हेरि महि-मधि गीर॥

- सैसव जौवन दुहु मिलि गेल।
स्रवन क पथ दुहु लोचन लेल॥
वचन क चातुरि लहु-लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास॥
मुकुर लई अब करई सिंगार।
सखि कुछइ कइसे सुरत-विहार॥
निरजन उरज हेरइ कत बेरि।
हसइ से अपन पयोध हेरि॥
पहिल बदरि-सम पुन नवरंग।
दिन-दिन अनंग अगोरल अंग॥
माधव पेखल अपुरुब वाला।
सैसव जौवन दुहु एक भेला॥
विद्यापति कह तह अगेआनि।
दुहु एक जोग हइ के कह सयानि॥

4. कबीर (संपादक-हजारीप्रसाद द्विवेदी)

लोका मति के भोरा रे।
जो कासी तन तजै कबीरा,
तौ रामहिं कहा निहोरा रे।
तब हम वैसे अब हम ऐसे,
इहै जनम का लाहा रे।
रा-भगति-परि जाकौ हित चित
ताकौ अचिरज काहा रे।
गुरु-परसाद साध की संगति,
जन जीतें जाइ जुलाहा रे।
कहै कबीर सुनहु रे संतो,
भ्रंमि परै जिनि कोई रे।
जस कासी तस मगहर ऊसर,
हिरदै राम सति होई रे।
पूजा-सेवा-नम-व्रत, गुडियन का-सा खेल।
जब लग पिउ परसै नहीं, तब लग संसय मेला॥
जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मेल करो तलवार का पडा रहन दो म्यान॥
हस्ती चढिए ज्ञान कौ, सहज दुलीचा डारि॥
स्वान-रूप संसार है, भूँकन दे झक मारि॥

मेरा-मेरा मनुआँ कैसे इक होई रे।
मैं कहता हो आँखिन देखी, तू कहता कागद की देखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तु राख्यौ उरझाई रे।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू जाता है सोही रे।
मैं कहता निर्मोहि रहियो, तू जाता मोही रे।
जुगन जगन समुझावत हारा, कही न मानत कोई रे।
तु तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारे खोई रे।
सतगुरु धारा निर्मल बाहै, वामैं काया धोई रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पाँच वत्त की बनी चुनरिया, सोरहसै बैंद लागे जिया।
यह चुनरी मोरे मैकेतें आई, ससुरे में मनुवा खोय दिया।
मलि मलि धाई दाग न छूटे, ज्ञान को साबुन लाय पिया।
कहै कबीर दाग कब छुटि है, जब साहब अपनाय लिया।

तेरा जन एक आध है कोई।
काम-क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद, चीन्हैं सोई॥
राजस-तामस-सातिग तीन्यूँ, ये सब तेरी माया।
चौथे पद कौं जे जन चीन्हैं, तिनहि परम पद पाया।

अस्तुति-आसा छाँडै, तजै मान अभिमाना।
लोहा-कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवाना॥
च्यंतै तो माधौ च्यंतामणि हरिपद रमैं उदासा।
त्रिसनां अरु अभमान रहित है कहै कबीर सो दासा॥

साधो, देखो जग बौराना।
साँची कहौं तौ मारन धावै झूँठे जग पतियाना।
हिंदू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना।
आपस मैं दोऊ लडे मरतु है मरम कोई नहिं जाना।

बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी प्रात करें असनाना।
आतम-छोडि पषानै पूजैं तिनका थोथा ज्ञाना।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन मे बहुत गुमाना।
पीपर-पाथर पूजन लागे तीरथ-बर्त भुलाना।
माला पहिरे टोपी पहिरे छाप-तिलक अनुमाना।
साखी सब्दै गावत भूले आतम खबर न जाना।
घर-घर मंत्र जो देन फिरत हैं माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित शिष्य सब बूडे अंतकाल पछिताना।
बहुतक देखे पीर-औलिया पढै किताब-कुराना।
करै मुरीद कबर बतलावैं उनहूँ खुदा न जाना।

हिंदू की दया मेहर तुरकन की दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह वाँ झटका मारे आग दोऊ घर लागी।
या बिधि हँसत चलत है हमको आप कहावै स्याना।
कहै कबीर सुनों भाई साधो, इनमें कौन दिवाना।

चली मैं खोच में पिया की। मिटी नहिं सोच यह जिय की॥
रहे नित पास ही मेरे। न पाऊँ यार को हेरे॥
बिकल चहूँ ओर को धाऊँ। तबहूँ नहिं कत को पाऊँ॥
धरों केहि भाँति सो धीरा। गयो गिर हाथ से हीरा॥
कटी जब नैन की झाईं। लख्यो तब गगन में साईं॥
कबीर शब्द कहि त्रासा। नयन में यार को बासा॥

तफलै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदया,
तफलै तफलै के भोर किया॥
तनम न मोर रहँट-अस डोलै,
सुन्न सेज पर जनम छिया।
नैन थकित भये पंथ न सूझै,
साँई बेदरदी सुध न लिया॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
हरो पीर दुख जोर किया॥

नैना अंतरि आव तूँ, ज्यों हौं नैन झँपेऊँ।
ना हौं देखौं और कूँ, नाँ तुझ देखन देऊँ॥1॥
कबीर रेख सिंदूर की काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ॥2॥
मन परतीति न प्रेम-रस, नाँ इस तन में ढंग।
क्या जाणौं उस पीवसूँ, कैसै रहसी रंग॥3॥

नैनों क करि कोठरी, पुतरी पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै, पिया को लिया रिझाय॥1॥
प्रीतम को पतिया लिखूँ, जो कहूँ होय विदेस।
तन में मन में नैन में, ताको कहा सँदेस ॥2॥

अँखियाँ तो झाईं परी, पंथ निहारि निहारि।
जीहडियाँ छाला पड्या नाम पुकारि पुकारि॥1॥
बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन।
माँगे दरस मधूकरी, छके रहै दिन-रैन॥2॥
सब रंग ताँत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साई कै चित्त॥3॥

कैसे दिन कटिहैं जतन बताये जइयो।
एहि पर गंगा ओहि पर जमुना,
बिचवाँ मडइया हमकाँ छवाये जइयो।
अँचरा फारिके कागज बनाइन,
अपनी सुरतिया हियरे, लिखाये जइयो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बहियाँ पकरिकें रहिया बताये जइयो।

भीजै चुनरिया प्रेम-रस बूँदन।
आरत साज के चली है सुहागिन पिया अपने को ढूँढन।
काहे की तोरी बनी चुनरिया काहे को लगे चारों फूँदन।
पाच तत्त की बनी चुनरिया नाम के लागे फूँदन।
चढिगे महल खुल गई रे किबरिया दास कबीर लागे झूलन॥

मैं अपने साहब संग चली।
हाथ में नरियल मुख में बीडा, मोतियन माँग भरी।
लिल्ली घोडी जरद बढेडी, तरप चढि के चली।
नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरंत जनम सुधरी।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली।

गुरु मोहिं घुँटिया अजर पियाई।
गुरु मोहिं घुँटिया पियाई, भई सुचित मेटी दुचिताई।
नाम-औषधी अधर-कटोरी, पियत अधाय कुमति गई मोरी,
ब्रह्मा-बिसनु पिये नहीं पाये, खोजत संभू जन्म गँवाये।
सुरत निरत करि पियै जो कोई, कहै कबीर अमर होय सोई।।

कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपे सोई पिवै, नही तो पिया न जाइ।।1।।
हरि-रस पीया जाणिये, जे कबहूँ न जाइ खुमार।
मैमता घूमत रहैं, नाहीं तन की सार ।।2।।
सबै रसायण मैं किया, हरि-सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तो सब कंचन होइ ।

पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगे थैं सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।।1।।
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आवौं हट्ट।।2।।
कबीर गुरु गरवा मिल्या, रलि गया आटे लूँण।
जाति-पाँति-कुल सब मिटै, नाँव धरौगे कौण।।3।।
सतगुरु हमसूँ रीझि करि एक कह्या परसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।

मेरी अँखियाँ जान सुजान भई।
देवर ननद ससुर संग तजि करि, हरि तीव तहाँ गई।।
बालपनै के करम हमारे, काटे जानि दई।
बाँह पकरि करि किरण कीन्हीं, आप समीप लई।
पानी की बूँदथे जिनि प्यँड साज्या, ता संगि अधिक रई।।
दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन-दिन प्रीति नई।।

मोरे लगि गए बान सुरंगी हो।
धन सतगुरु उपदेश दियो है, होइ गयो चित्त भिरंगी हो।
ध्यान पुरुष की बनी है तिरिया, घायल पाँचों संगी हो।
घायल की गति घायल जाने, की जानै जात पतंगी हो।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, निसि दिन प्रेम उमंगी हो।

पिया मेरा जागे मैं कैसे सोई री।
पाँच सखी मेरे संग की सहेली,
उन रँग रँगी पिया रंग न मिली री।।
सास सयानी ननद देवरानी,
उन डर डरी पिय सार न जानी री।
द्वादस ऊपर सेज बिछानी,
चढ न सकौं मारी लाजल जानी री।
रात दिवस मोहिं कूका मारे,
मैं न सुनी रचि नहि संग जानी री।
कहै कबीर सुनु सखी सयानी,
बिन सतगुरु पिया मिले न मिलानी री।।

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिय तरसै तुझ मिलक कूँ मनि नाही बिस्राम।।1।।
बिरहिनी ऊठै भी पडे, दरसन कारनि राम।
मूवा पीछे देहुगे, सो दरसन केहि काम ।।2।।
मूवा पीछे जिनि मिले, कहै कबीरा राम।
पाथर-घाटा-लोह, सब पारस कौणै काम ।।3।।
बासरि सुख ना रैणि सुख, ना सुख सुपिनै माहिं।
कबीर बिछुट्या रामसूँ, ना सुख धूव न छाँहि।।44।।

परबति परबति मैं फिर्या, नैन गँवाए रोइ।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जातैं जीवन होई।।1।।
नैन हमारे जलि गए, छिन छिन लोडै तुज्झ।
नाँ तूँ मिलै न मैं खुसी ऐसी बेदन मुज्झ।।2।।
सुखिया सब संसार है खाये अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवै।।3।।

कबिरा प्याला प्रेम का, अंतर दिया लगाय।
रोम रोम में रमि रह्या, और अमल क्या खाय।।1।।
राता-माता नाम का, पीया प्रेम अघाय।
मतवाला दीदार का, माँगै मुक्ति बलाय।।2।।

ऐ कबीर, तैं उतरि रहु, संबल परो न साथ।
संबल घटे न पगु थकें, जीव बिराने हाथ।।1।।
कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहली गैल।
पाँव न टिकै पिपीलिका, खलकन लादे बैल।।2।।

काल खडा सिर ऊपरे, जागु बिराने मीत।
जाका घर है गैल में, सो कस सो निचीत।

नैहर मैं दाग लगाय आय चुनरी।
ऊ रँगरेजवा कै मरम न जानै,
नहिं मिलै धोबिया कौन करै उजरी।
तन कै कूँडी ज्ञात कै सौदन
सबुन महँग बिचाय या नगरी।
पहिरि-औढि के चली ससुररिया,
गौवाँ के लोग कहैं बडी फुहरी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो,
बिना सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी।

अपनपौ आप ही बिसरा।
जैसे सोनहा काँच मंदिर मैं भरमत भूँकि मरो।
जो केहरि बपु निरखि कूल-जल प्रतिम देखि परो।
ऐसेहिं मदगज फटिक शिला पर दसननि आनि अरो।
मरकट मुठी स्वाद ना बिसरै घर घर नटत फिरो।
कह कबीर ललनी के सुवना तोहि काने पकरो।

5. जायसी ग्रंथावली (संपादक-रामचंद्र शुक्ल)

- आचार्य शुक्ल द्वारा संपादिक पद्मावत (जायसी ग्रंथावली) का 30 वाँ खंड नागमती-वियोग खंड है।
- पद्मावत में श्रृंगार का वियोग पक्ष तीन चरित्रों के माध्यम से दिखाया गया है - रत्नसेन, पद्मावती तथा नागमती।
- जायसी ने नागमती के विरह का विस्तृत वर्णन किया है जो बेहद रमणीय, सुंदर व मार्मिक है। नागमती रत्नसेन की पत्नी है जो रत्नसेन के पद्मावती की खोज में सिंहलद्वीप जाने पर एक वर्ष तक पति से अलग रहने का कारण विरह वेदना भोगती है। सच यह है कि जायसी का भावुक मन नागमती के वियोग में ही अधिक रमा है। इस संबंध में शुक्ल जी की स्पष्ट धारणा है कि - "नागमती का विरह वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है"
- नागमती के विरह-वर्णन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह मानी गई है कि इसमें नागमती को रानी के रुप में नहीं, एक साधारण विरहदग्ध नारी के रुप में वर्णित किया गया है। शुक्ल जी करहते हैं-"अपनी भावुकता का बडा भारी परिचय जायसी ने इस बात में दिया है कि रानी नागमती विरहदशा में अपना रानीपन बिल्कुल भूल जाती है और अपने को केवल साधारण नारी के रुप में देखती । इसी सामान्य स्वाभाविक वृत्ति के बल पर उसके विरहवाक्य छोटे-बडे सबके हृदय को समान रुप में स्पर्श करते हैं।"
- नागमती के विरह- वर्णन की एक और प्रमुख विशेषता यह है कि उसका विरह केवल वैयक्तिक संयोग सुख की प्रेरण पर आधारित नहीं है बल्कि जीवन के लोक-व्यवहारों तथा कर्त्तव्यों से जुडा हुआ है। नागमती मध्यकाल की एक हिंदू नारी है जिसके जीवन की सारी सार्थकता उसके पति में केंद्रित है।
- नागमती के वियोग में इस गार्हस्थिक चेतना ने अद्भुत मार्मिकता का समावेश कर दिया है।
- विरह-वर्णन में फारसी मसनवियों की शैली प्रायः ऊहात्मक हो जाती है। ऊहात्मकता का अर्थ है-विरह का ऐसा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन जो असामान्य होने के साथ-साथ कहीं-कहीं कुरुचिपूर्ण या जुगुप्सापूर्ण होने लगे। नागमती के विरह वर्णन में जायसी ने ऊहात्मकता का सहारा तो लिया है किंतु उसे कहीं भी मज़ाक का विषय नहीं बनने दिया है।

पद्मावत (नागमती वियोग खंड से)

- नागमती चितउर पथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा।।
  नागर काहु नारि बस परा। तेई मोहि, पिय मौं सों हरा।।
  सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ।।
  भएउ नरायन बावँन करा। राज करत राजा बलि छरा।।
  करन पास लीन्हेउ के छंदू। बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू।
  मानत भोग गोतिचँद भोगी। लेइ अपसवा जलंधर जोगी।।
  लेइगा कृस्नहि गरुडत्र अलोपी। कठिन बिछोह, जियहिं किमि गोती।।
  सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ?
  झुरि झुरि पींजर हौं भई, बिरह काल माहि दीन्हा ।।1।।
  - भारतीय पौराणिक कथाओं का प्रयोग

- पिउ बियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा निति बोलै 'पिउ पीऊ'।।
  अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेइ सुवा गएउ पिउ नामा।।
  हिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज, भीजि गई चोली।।
  सूखा हिया, हार भा भारी। हरि हरि प्रान तजहिं सब नारी।।
  खन एक आव पेट महँ! सांसा। खनहिं जाइ जिउ, होइ निरासा।।
  पवन डोलावहिं सीचहिं चोला। पहर एक समुझहिं मुख बोला।
  प्रान प्यान होत को राखा ? को सुनाव पीतम के भाखा ?
  आहि जो मारै बिरह कै, आणि उठै तेहि लागि।
  हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख जार, गा भागि।।2।।

- अलंकार-रुपक, अतिशयोक्ति

- पाट महादेइ! थहये ना हारु। समुझि जीउ, जित चेतु सँभारु॥
भौर कँवर सँग होइ मेरावा। सँवरि नेह मालति पहँ आवा॥
पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती। टेकु पियास, बाँधु मन थीती॥
धरतिहि जैस गगन सौं नहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेहा॥
पुनि बसंत ऋतु आव नवेली। सो रस, सो मधुकर, सो बेली॥
जिनी अस जीव करसि तू बारी। यह तरिवत पुनि उठिहि सँवारी॥
दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा। पुनि सोई सरवर, सोई हंसा॥
मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पतुहंत॥3॥
  - अलंकार-उपमा व दृष्टांत

- चढा असाढ, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा॥
धूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग-पाँति देखिए॥
खडग बीचु चमकै चहुँ ओरा। बुंद-बान बरसहिं घन घोरा॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हौं घेरी॥
दादुर मोर कोकिला, पीऊ। गिरै बीचु, घट रहै न जीऊ॥
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा?॥
अद्रा लाग लागि भुइँ लेई। मोहिं बिनु पिउ को आदर देई?॥
जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब॥4॥
  - बारहमासा वर्णन : आषाढ
    - अलंकार - उत्प्रेक्षा

- सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी॥
लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भइ बाउरि, कहँ कंत सरेखा?॥
रकत कै आँसु परहिं भुइँ टूटी। रेंगि चलीं जस बीरबहूटी॥
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियरि भूमि, कुसुंभी चोला॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देइ झकझोरा॥
बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी॥
जग जल बूड जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी॥
परबत समुद अगम बिच, बीहड वन बनढाँख।
किमी के भेंटौं कंता तुम्ह ? ना मोहिं पाँव न पाँख ॥5॥
  - बारहमासा वर्णन : सावन (श्रावन)
  - अलंकार-अत्प्रक्षा ?

- भा भादौं दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अँधियारी॥
मँदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा॥
रहौं अकेलि गहे इक पाटी। नैन पसारि मरौं हिया फाटी॥
चमक बीजु, घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा॥
बरसै मघा झकोरि झकोरी। मौरि दुइ नैन चुवैं जस ओरी॥
धनि सूखै भरे भादौं माहाँ। अबहुँ न आएन्हि सींचेन्हि नाहा॥
पुरबा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भाई तस झूरी॥
थल जल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक।
धनि जोबन अवगाह महँ, दे बूडत, पिउ! टेक ॥6॥
  - बरहमासा वर्णन : भादो (भद्रपद)

- लाग कुवार, नीर जग घटा। अबहूँ आउ कंत! तन लटा॥
तोहि देखे, पिउ! पलुहै कया। उतरा चीत्त बहुरि करु मया॥
चित्रा मित्र मीन कर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा॥
उआ अगस्त, हस्ति-घन गाजा। तुरय पलानि चढे रन राजा॥
स्वाति-बूँद चातक मुख परे। समुद सीप मोती सब भरे॥
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरलहिं, खजन दिखाए।
भा परगास, काँस बन फूले। कंत न फिरे, बिदेसहि-भूले॥
बिरह हस्ति तन सालै, धाय करै चित चूर।
बेगि आइ, पिउ! बाहहु, गाजहु होइ सदूर ॥7॥

- बारहमासा वर्णन : क्वार (आश्विन)
- अलंकार – विराधाभास, उत्प्रेक्षा, रूपक

- कातिक सरद-चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी॥
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जरै सब धरति अकासा॥
तनम न सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चंद, भएउ मोहि राहू॥
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौं घर जाही कंत पियारा॥
अबहूँ निठुर! आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा॥
सखि झूमक गावैं अँग मोरी। हौं झुरावँ, बिछुरी मोरि जोरी॥
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूरा। मो कहँ बिरह, सवति दुख दूजा॥
सखि मानैं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि॥8॥
  - बरीहमासा वर्णन : कार्तिक
  - अतंकार – विराधाभास, पत्प्रेक्षा, रुपक
  - परब, देवरी-ठेठ अवधी के शब्द
  - छार सिर मेलि – मुहावरा है

- अगहन दिवस घटा, निसि बाढी। दूभर रैनि, जाइ किमी गाढी ?॥
अब धनि बिरह दिवस भा राती। जरौं बिरह जस दीपक-बाती॥
काँपै हिया जनावै सीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ॥
घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप-रँग लेइगा नाहू॥
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै, फिरै रँग सोई॥
बज्र-अगिनि बरहिनि हिय जारा। सुलुगि सुलुगि दगधै होइ छारा॥
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जनम करै भसमंतू॥
पिउ सौं कहेउ सँदेसडा हे भौरा! हे काग!
सो धनि बिरहै जरि मुई तेहि क धुवाँ हमह लाग ॥9॥
  - बारहमासा वर्णन : अगहन (मार्गशीष)
  - अलंकार-उत्प्रेक्षा, उपमा, अतिशयोक्ति, विराधाभास

- पूस जाड थर थर तन काँपा। सुरुज जाइ लंका-दिसि चाँपा॥
बिरह बाढ दारुन भा सीऊ। कँपि कँपि मरौं, लेइ हरि जीऊ॥
कंत कहाँ, लागौं ओहि हियरे। पंथ अपार, सूझ नहिं नियरे॥
सौंर सपेती आवै जूडी। जानहु सेज हिवंचल बूडी॥
चकई अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जियै बिछोही पखी॥
बिरह सचान भएउ तन जाडा। जियत खाइ औ मुए न छाँडा॥
रकतढुरा माँसू गरा, हाड भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीउ समेटहि पंख ॥10॥
  - बारहमासा वर्णन : पूस (पौष)
  - अलंकार-उत्प्रेक्षा, रूपक, पुनरुक्ति पंकाश

- लागेउ माघ परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जडकाला॥
पहल पहल तन रूई साँपै। हहरि अधिकौ हिय काँपै॥
आइ सूर होइ तपु, रे नाहा। तोहि बिनु जाड न छूटै माहा॥
एहि माँह उपजै रसमूलू। तूँ सो भौंर मोर जोवन फूलू॥
नैन चुवहिं जस महवट नीरू। तोहि बिनु अंग लाग सर चीरू॥
टप टप बूँद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला॥
केहि क सिंगार, को पहिरु पटोर ?। गीउ न हार, रही होइ डोरा॥
तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उडावा झोल॥11॥
  - बारहमासा वर्णन : माघ

- फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउस जाइ नहिं सहा॥
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥
तरिवरझरहिं, झरहिं बन ढाखा। भई ओनंत फूलि फरि साखा॥
करहिं बनसपति हिये हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू॥
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहिं तन लाइ दीन्हि जस होरी॥
जौं पै पीउ जरत अस पावा। जरत मरत मोहिं रोष न आवा॥
राति दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे॥
यह तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन! उडाव'।

मकु तेहि मारग उडि परै, कंत धरै जहँ पाव ॥12॥

- बरीहमासा वर्णन : फागुन (फाल्गुन)
- चाँचरि : फागुन में गाए जाने वाला श्रृंगारिक लोक नृत्य-गित

- चैत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी॥
  पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै॥
  बूडि उठे सब तरिवर-पाता। भीजि मजीठ, टेसु बन राता॥
  बौरे आम फरै अब लागै। अबहुँ आउ घर, कंत सभागे॥
  सहस भाव फूलीं बनसपती। मधुकर घूमहिं सँवरि मालती॥
  मोकहँ फूल भए सब काँटे। दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे॥
  फरि जोबन भए नारँग साखा। सुआ बिरह अब जाइ न राखा॥
  घिरिनि परेवा होइ पिउ! आउ बेगि परु टूटि।
  नारि पराए हाथ है, तोहि बिनु पाव न टुटि॥13॥
  - बारहमासा वर्णन : चैत्र
  - 'मोहिं लेखे संसार उजारी', 'जस लागहिं चाँटे' मुहावरे हैं
  - अलंकार-उपमा व रूपक
- भा बैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चँदन भा आगी॥
  सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह-बजागि सौंह रथ हाँका॥
  जरत बजागिनि करु, पिउ! छाहाँ। आइ बुझाउ, अँगारन्ह माहाँ॥
  तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि तें करु फुलवारी॥
  लागिउँ जरै जरै, जस भारू। फिरि भूँजेसि भूँजेसि, तजिउँ न बारू॥
  सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई॥
  बिहरत हिया करहु, पिउ टेका। दीठि-दवँगरा मेरवहु एका॥
  कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गएउ सुखाइ।
  अबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जौं पिउ सींचै आइ॥14॥
  - बारहमासा वर्णन : बैसाख
  - सरवर हिया, दीठि दवँगरा-रूपक अलंकार
- जेठ जरै जग, चलै लुवारा। उठहिं बवंडर परहिं अँगारा॥
  बिरह गाजि हनुवँत होइ जागा। लंका-दाह करै तनु लागा॥
  चारिहु पवन झकोरै आगी। लंका दाहि पलंका लागी॥
  दहि भइ साम नदी कालिंदी। बिरहक आगि कठिन अति मंदी॥
  उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ, मरौं दुःख बाँधी॥
  अधजर भइउँ, माँसु तन सूखा। लागेउ बिरह काल होइ भूखा॥
  माँसु खाइ सब हाडन्ह लागै। अबहुँ आउ, आवत सुनि भागै॥
  गिरि, समुद्र, ससि, मेघ रवि, सहि न सकहिं वह आगि।
  मुहमद सती सराहिए, जरै जो अस पिउ लागि॥15॥
  - बारहमासा वर्णन : जेठ (ज्येष्ठ)
  - 'लंका दाहि पलंका लागी'-लोकोक्ति प्रयोग
  - अलंकार-उपमा व रूपक
- तपै लागि अब जेठ असाढी। मोहि पिउ बिनु छाजनि भइ गाढी॥
  तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगति जरी॥
  बंध नाहिं औ कंध न कोई। बात न आव, कहौं का रोई?॥
  साँठि नाठि, जग बात को पूछा ? बिम जिउ फिरै मूँज-तनु छूँछा॥
  भई दुहेली टेक बिहूनी। थाँम नाहिं उठि सकै न थूनी॥
  बरसै मेघ चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होइ रहिं बिनु नाहा॥
  कोरौं कहाँ ठाट नव साजा। तुम बिनु कत न छाजनि छाजा॥
  अबहूँ मया-दिस्टि कर, नाह निठुर। घर आउ।
  मँदिर उजार होत है, नव कै आई बसाउ॥16॥
  - बारहमासा वर्णन : आषाढ
  - इस पद में दो संदर्भ हैं नागमती की देह तथा छप्पर का

- रोइ गँवाए बारह मासा। सहस सहस दुख एक एक साँसा॥
  तिल तिल बरख परि जाई। पहर पहर जुग जुग न सेराई॥
  सो नहिं आवै रूप मुरारी। जासौं पाव सोहाग सुनारी॥
  साँझ भए झुरि झुरि पथ हेरा। तोला माँसु रही नहीं देहा॥

रकत न रह बिरह तन गरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा॥
पाय लागि जोरै धनि हाथा। जारा नेह, जुडावहु, नाथा॥
बरस दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झखि।
मानुष घर घर बूझि कै, बूझै निसरी पंखि॥17॥

- सो नहिं आवै रूप मुरारी। जासौं पाव सोहाग गुनारी 11-श्लेष अलंकार (श्लेष शब्द सोन, रूप, सुहाग, सुनारी आदि)

• भई पुछार, लीन्ह बनबासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिलबाँसू॥
होइ खर बान बिरह तनु लागा। जौ पिउ आवै उडहि तौ कागा॥
हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा ?॥
धौरी पंडुक कहु पिउ कठँ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा॥
कोइल भई पुकारति रही। महरि पुकारे 'लेइ लेइ दही'॥
पेड तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठि बिरह कटनंसा॥
जेहि पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥18॥

- श्लेष अलंकार की सुंदर योजना- पूरे कडवक में एक अर्थ नागमती की विरह दशा को व्यंजित करता है तो दुसरा अर्थ जायरी के पक्षी-ज्ञान का परिचय देता है।
- श्लेष के साथ अतिशयोक्ति अलंकार भी

• कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत आँसु घुंघुची बन बोई॥
भइ करमुखी नैन तन राती। को सेराव ? बिरहा दुख ताती॥
जहँ जहँ ठाढि होइ बनबासी। तहँ तहँ होइ घुँघुचि कै रासी॥
बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ। गुंजा गूँजि करै 'पिउ पीऊ'॥
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूडि उठे होइ राते॥
राते बिब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक फाट हिय गोहूँ॥
देखौ जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता?॥
नहिं पावस ओहि देसरा: नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत॥19॥

6. सूरदास-भ्रमरगीत सार (संपादक-रामचंद्र शुक्ल)

महाकवि सूर कृत 'सूरसागर' के दशम स्कंध में 'भ्रमरगीत' की रचना है। 'भ्रमरगीत सार' के संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा उप-संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र है। इस पुस्तक में कुल 400 पद है। पुस्तक में वक्तव्य और आलोचना रामचंद्र शुक्त तथा आमुख विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है। (भ्रमरगीत संबंधी विस्तृत जानकारी कृष्णभक्ति वाले अध्याय में दी गई है।)

राग केदार

गोकुल सबै गोपाल-उदासी।
जोग-अंग साधत जे ऊधो ते सब बसत ईसपुर कासी॥
यद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरननि रसरासी।
टपनी सीतलताहि न छाँडत यद्यपि है ससि राहु-गरासी॥
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भजन तजि करत उदासी।
सुरदास ऐसी को विरहिन माँ गति मुक्ति तजे गुनरासी?॥

- योग के 8 नियम - यम, नियम, आसन, प्राणयाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि
- अलंकार - श्लेष, काकुवक्रोक्ति

राग धनाश्री

जीवन मुँहचाही को नीको।
दरस परस दिन रात करति है कान्ह पियारे पी को॥
नयनन मूँदि-मूँदि किन देखौ बँध्यो ज्ञान पोथी को।
आछे सुंदर स्याम मनोहर और जगत सब फीकों॥
सुनौ जोग को कालै कीजै जहाँ ज्यान है जी को ?
खाटी मही नहीं रुची मानै सूर खवैया घी का॥

- 'असूया' संचारी भाव (ईर्ष्याभाव)
- कुब्जा के प्रति ईर्ष्या भाव
- अलंकार - वक्रोक्ति

राग काफी

आयो घोष बडो व्यापारी।
लादि खेप गुन ज्ञान-जोग की ब्रज में आन उतारी॥
फाटक दैकर हाटक माँगत भोरै निपट सुधारी।
धुर ही तें खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी॥

ठनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी ?
अपनों दुध छाँडि को पीवै खार कूप को पानी।।
ऊधो जाहु सबार यहाँ तें बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँहमाँग्यो पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।।

- खेप गुन ज्ञान-जोग -रूपक अलंकार
- प्रभु साहुहि - रूपक अलंकार

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह ब्योपार तिहारो ऊधो! ऐसोई फिरि जैहै।।
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छाँडि कै कटुक निंबौरी को अपने मुख खैहै?
मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दै है।
समरदास प्रभु गुनहि छाँडि कै को निर्गुन निर्बैहै?।।

- जोग ठगौरी - रूपक अलंकार
- पूरे पद में वक्रोक्ति अलंकार

जो ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह ब्योपार तुम्हारो ऊधो! ऐसोई फिरि जैहै।।
जापै लै आए हौ मधुकर ताके उर न समैहै।
दाख छाँडि कै कटुक निंबौरी को अपने मुख खैहै?
मूरी के पातन के केना को मुक्ताहल दै है।
सूरदास प्रभु गुनहि छाँडि कै को निर्गुन निर्बैहै?

- 'जोग ठगौरी' - रूपक अलंकार
- 'पूरे पद में वक्रोक्ति अलंकार

राग मलार

हमरे कौन जोग व्रत साधै?
मृगत्वच, भस्म अधारि, जटा को को इतनौ अवराधै?
जाकी कहूँ थाह नहिं पैए अगम, अपार, अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधै?
असन पवन बिभूति मृगछाला ध्याननि को अवराधै?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधै?।।

- 'गिरिधर' लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधै- मुहावरे का प्रयोग
- अलंकार - काकुवक्रोक्ति

राग धनाश्री

हम तो दुहूँ भाँति फल पायो।
को ब्रजनाथ मिलैं तो नीको, नातरु जग जस गायौ।।
कहँ बै कमला के स्वामी संग मिल बैठीं इक पाँती।।
निगमध्यान मुनिज्ञान अगोचर, ते भए घोषनिवासी।
ता ऊपर अब साँच कहो धौं मुक्ति कौन की दासी?
जोग-कथा, पा लागों ऊधो, ना कहु बारंबार।
सूर स्याम तजि और भजै जो ताकी जननी छार।।

- 'सूर स्याम तजि और भजै जो ताकी जननी छार' - लोकोक्ति अलंकार

- कृष्ण के विष्णु अवतार का संकेत

राग कान्हरी

पूरनता इन नयनन पूरी।
तुम जो कहत स्रवननि सुनि समुझत, ये याही दुख मरति बिसूरी।
हरि अंतर्यामी सब जानत बुद्धि विचारत बचन समूरी।
वै रस रूप रतन सागर निधि क्यों मनि पाय खवावत धूरी।।
रहु रे कुटिल, चपल, मधु लंपट, कितव सँदेस कहत कटु कूरी।
कहँ मुनिध्यान कहाँ ब्रजयुवती! कैसे जात कुलिस करि चूरी।।
देखु प्रगट सरिता, सागर, सर, सीतल सुभग स्वाद रुचि रूरी।
सूर स्वातिजल बसै जिस चातक चित्त लागत सब झूरी।।

- 'वै रस रूप रतन सागर निधि क्यों मनि पाय खवावत धूरी' - लोकोक्ति का प्रयोग
- 'कहँ मुनिध्यान कहाँ ब्रजयुवती! कैसे जात कुलिस करि चूरी' - निदर्शना अलंकार

राग धनाश्री

कहतें हरि कबहूँ न उदास।
राति खवाय पिवाय अधररस क्यों बिसरत सो ब्रज को बास।।
तुमसों प्रेम कथा को कहिबो मनहुं काटिबो घास।
बहिरो तान-स्वाद कहँ जानै, गूँगो-बात-मिठास।।
सुनु री सखी, बहुरि फिरि ऐहैं वे सुख बिबिध बिलास।
सूरदास ऊधो अब हमको भयो तेरहों मास।।

- 'तुमसों प्रेम कथा को कहिबो मनहुं काटिबो घास'

मुहावरे का प्रयोग

- 'बहिरो तान-स्वाद कहँ जानै, गूँगो-बात-मिठास' - उदाहरण अलंकार
- 'स्मृति संचारी भाव का उदाहरण

तेरो बुरो न कोऊ मानै।
रस की बात मधुप नीरस सुनु, रसिक होत सो जानै।।
दादुर बसै निकट कमलन के, जन्म न रस पहिचानै।
अलि अनुराग उडन मन बाँध्यो कहे सुनत नहि कानै।।
सरिता चलै मिलन सागर को कूल मूल द्रुम भानै।
कायर बकै, लोह तें भजै, लरै जो सूर बखानै।।

- अलंकार – तुल्ययोगिता व श्लेष

घर ही के बाढे रावरे।
नाहिन मीत वियोगबस परे अनवउगे अति बावरे।।
भुख मरि जाय चरै नहिं तिनुका, सिंह को यहै स्वभाव रे!
स्रवन सुधा-मुरली के पोषे, जोग-जहर न खवाव रे!
ऊधो हमहि सीख का दैहोघ हरि बिनु अनत न ठाँव रे!
सूरदास कहा लै कीजै थाही नदिया नाव रे।।

- 'घर ही के बाढे रावरे' – लोकोक्ति का प्रयोग
- अलंकार – रूपक, उदाहरण, अन्योक्ति

राग सोरठ

अटपटि बात तिहारी ऊधो सुनै सो ऐसी को है?
हम अहीरि अबला सठ, मधुकर! तिन्हैं जोग कैसे सोहै?
बूचिहि खुभी आँधरी काजर नकटी पहिरै बेसरि।
मुँडली पाटी पारन चाहै, कोढ अंगहि केसरि।।
बहिरी सौं पति मतो करै सो उतर कौन पै पावै?
ऐसा न्याव है ताको ऊधो जो हमैं जोग सिखावै।।
जो तुम हमको लाए कृपा करि सिर चढाय हम लीन्हे।
सूरदास नरियर जो विष को करहि बंदना कीन्हे।।

- 'सूरदास नरियर जो विष को करहि बंदना कीन्हें' – मुहावरे का प्रयोग

राग सारंग

हरि काहे के अंतर्यामी?
जौ हरि मिलत नहीं यहि औसर, अवधि बतावत लामी।।
अपनी चोप जाम उठि बैठे और निरस बेकामी।
सो कहँ पीर पराई जानै जो हरि गरुडगामी।।
आई उधरि प्रीति कलई सी जैसे खाटी आमी।
सूर इते पर अनख मरति है, ऊधे पंवत मामी।।

- उलाहना भाव का चित्रण

बिलग जनि मानहु, ऊधौ प्यारे!
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।।
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे।।
मानहु नील माट तें काढे लै जमुना ज्यों पखारे!
ता गुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम-गुन न्यारे।।

- अलंकार – रूपक, अनुप्रास

राग सारंग

तुम जो कहत संदेसो आनि।
कहा करौं वा नंदनन्दन सौं होत नहीं हितहानि।।
जोग-जुगुति किहि काज हमारे जदपि महा सुखखानि?
सने सनेह स्यामसुंदर के हिलि मिलि कै मन मानि।।
सोहत लोह परसि ज्यों सुबरन बारह बानि।
पुनि वह चोप कहाँ चुम्बक ज्यों लटपटाय लपटानि।।
रूपरहित नीरासा निरगुन तनगमहु परत न जानि।
सूरदास कौन बिधि तासों अब कीजै पहिचानि।।

- 'सोहत लोह परसि ज्यों बुबरन बारह बानि' – उदाहरण अलंकार
- 'नीरसारा निरगुन निगमहु' – अनुप्रास अलंकार

राग धनाश्री

हम तौ कान्ह केलि की भूखी।
कैसे निरगुन सुनहि तिहारी बिरहिनी बिरह-बिदूखी?
कहिए कहा यहौ नहिं जानत काहि जोग है जोग।
पा लागों तुमहीं सो वा पर बसत बावरे लोग।।
अंजन, अभरन, चीर, चारु बरु नेक आप तन कीजै।
दंड कमंडल, भस्म अधारी जो जुवतिन को दीजै।।
सूरदास देखि दृढता गोपिन की ऊधो यह ब्रत पायो।
कहै 'कृपानिधि हो कृपाल हो! प्रेमै पढन पठायो।।

- 'कहिए कहा यहौ नहिं जानत काहि जोग है जोग – यमक अलंकार
- लक्षणा शब्दशक्ति

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी।।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहिं झूखी।
अब इन जोग-सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी।।
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हटि नाव चलायो ये सरिता है सूखी।।

- 'सूर सिकत हटि नाव चलायो ये सरिता है सूखी' – निदर्शना अलंकार

राग सारंग

जाय कहौ बूझी कुसलात।
जाके ज्ञान न होय सो मानै कहि तिहारी बात।।
कारो नाम, रूप पुनि कारो, कारे अंग सखा सब गात।
जो पै भले होत कहुँ तौ कत बदलि सुता लै जात।
हमको जोग, भेग कुबजा को काके हिये समात।
सूरदास सेए तो पति कै पाले जिन्ह तेही पछितात।।

- उपालम्भ पद्धति का प्रयोग

कहा लौं कीजै बहुत बडाई।
अतिहि अगाध अपार अगोचर मनसा तहाँ न जाई।।
जल बिनु तरँग, भीति बिनु चित्रन, बिन चित ही चतुराई।
अब ब्रज में अनरीति कछू यह ऊधो आनि चलाई।।
रूप न रेख, बदन, बपु जाके संग न सखा सहाई।
ता निर्गुन सों प्रीति निरंतर क्यों निब है, री माई?
मन चुभि रही माधुरी मूरति रोम-रोम अरुझाई।
हौं बलि गई सूर प्रभु ताके जाके स्याम सदा सुखदाई।।

- 'जल बिनु तरँग, भीति बिनु चित्रन, बिन चित ही चतुराई' – विभावना अलंकार

राग मलार

काहे को गोपीनाथ कहावत?
जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत?
सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलेक लगावत।
जो पै स्याम कूबरी रीझे सो किन नाम धरावत?
ज्यों गतराज काज के औसर औरै दसन दिखावत।
कहन सुनन को हम हैं ऊधो सूर अनत बिरमावत।।

- 'ज्यों गतराज काज के औसर औरै दसन दिखावत' – लोकोक्ति अलंकार

अब कत सुरति होति है, राजन् ?
दिन दस प्रीति करी स्वारथ-हित रहत आपने काजन।।
सबै अयानि भई सुनि मुरली ठगीं कपट की छाजन।
अब मन भयो सिंधु के खग ज्यों फिरि फिरि सरत जहाजन।।
वह नातो टूटो ता दिन तें सुफलकसुत-सँग भाजन।
गोपीनाथ कहाय सूर प्रभु कत मारत हौ लाजन।।

- 'सिंधु के खग ज्यों' – उपमा अलंकार
- 'गोपीनाथ कहाय सूर प्रभु कत मारत हौ लाजन' – मुहावरे का प्रयोग

राग सोरठ

लिखि आई ब्रजनाथ की छाप।
बाँधे फिरत सीस पर ऊधो देखत आवै ताप।।
नूतन रीति नंदनंदन की, घर-घर दीजत थाप।
हरि आगे कुब्जा अधिकारी, तातें है यह दाप।।
आए कहन जोग अवराधे बिगत-कथा की जाप।
सूर सँदेसो सुनि नहिं लागै कहौ कौन को पाप।।

- 'देखत आवै ताप' – मुहावरे का प्रयोग
- अलंकार काकुवक्रोक्ति

राग सारंग

फिरि-फिरि कहा सिखावत बात?
प्रातकाल उठ देखत ऊधो घर-घर माखन खात।।
जाकी बात-कहत हौ हमसौं सो है हमसौं दूरि।
ह्याँ है निकट जसोदानंदन प्रान-सजीवनभूरि।।
बालक संग लये दधि चोरत खात खवावत डोलत।
सूर सीस धुनि चौंकत नावहिं अब काहे न मुख बोलत?

- 'फिरि-फिरि' – पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार
- 'सूर सीस' – अनुप्रास अलंकार

राग धनाश्री

अपने सगुन गोपालै माई! यहि बिधि काहे देत?
ऊधो की ये निरगुन बातैं मीठी कैसे लेत।।
धर्म, अधर्म कामना सुनावत सुख औ मुक्ति समेत।
काकी भूख गई मनलाडू सो देखहु चित चेत।
सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तिहारे हेत?

- 'काकी भूख गई मनलाडू', 'को भुस फटकै' – लोकोक्तियों का प्रयोग
- 'सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तिहारे हेत' – काकुवक्रोक्ति अलंकार

राग सारंग

हमको हरि की कथा सुनाव।
अपनी ज्ञानकथा हो ऊधो! मथुरा हीलै गाव।।
नागरि नारि भले बूझैंगी अपने बचन सुभाव।
पा लागों इन बातनि, रे अलि! उनही जाय रिझाव।।
सुनि, प्रयिसखा स्यामसुंदर के जो पै जिय सति भाव।
हरिमुख अति आरत इन नयननि बारक बहुरि दिखाव।।
जो कोउ कोटि जतन करे, मधुकर, बिरहिनि और सुहाव?
सूरदास मीनन को जल बिनु नाहिंन और उपाव।।

- अलंकार – निदर्शना

राग सारंग

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच क्रम नंदनंदन सौं उर यह दृढ करि पकरि।।
जागत, सोवत, अपने सौतुख कान्ह-कान्ह जक री।
सुनतहि लोग लगत ऐसा अलि! ज्यों करुई ककरी।।
सोई व्याधि हमें लै आए देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजे जिनके मन चकरी।।

- हारिल – एक पक्षी जो प्रायः चंगुल में कोई लकडी या तिनका लिए रहता है।
- अलंकार – उपमा, अनुप्रास

फिरि फिरि कहा सिखावत मौन?
दुसह बचन अति यों लागत उर ज्यों जारे पर लौना।।
सिंगी, भस्म, त्वचामृग, मुद्रा अरु अबरोधन पौन।
हम अबला अहीर, सठ मधुकर! घर बन जानै कौना।।
यह मत लै तिनहीं उपदेसौ जिन्हैं आजु सब सोहत।
सूर आज लौं सुनी न देखी पोत सूतरी पोहत।।

- 'फिरि फिरि' – पुररुक्तिप्रकाश अलंकार
- 'जारे पर लौन' – लोकोक्ति का प्रयोग

Toppersnotes Unleash the topper in you

राग केदारो

जानि चालो, अलि, बात पराई।
ना काउ कहै सुनै या ब्रज में नइ कीरति सब जाति हिंराई।।
बूझै समाचार मुख ऊधो कुल की सब आरति बिसराई।
भले संग बसि भई भली मति, भले मेल पहिचान कराई।।
सुंदर कथ कटुक सी लागति उपजत उर उपदेश खराई।
उलटी नाव सूर के प्रभु को बहे जात माँगत उतराई।।

- 'भले संग बसि भई भली मति, भले मेल पहिचान कराई' – वक्रोक्ति अलंकार
- काकुवक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग पूरे पद में।

राग मलार

याकी सीख सुनै ब्रज को, रे?
जाकी रहनि कहनि अनमिल, अलि, कहत समुझि अति थोरे।।
आपुन पद-मकरंद सुधारस, हृदय रहत नित बोरे।
हमसों कहत बिरस समझौ, है गगन कूप खनि खोरे।।
घान को गाँव पयार ते जानौ ज्ञान विषयरस भोरे।
सूर सो बहुत कहे न रहै रस गूलर को फल फोरे।।

- 'घान को गाँव पयार ते जानौ' – लोकोक्ति व लक्षणा प्रयोग
- 'गूलर को फल फोरे' – लोकोक्ति प्रयोग

निरखत अंक स्यामसुंदर के बारबार लावति छाती।
लोचन-जल कागद-मसि मिलि कै है गई स्याम स्याम की पाती।।
गोकुल बसत संग गिरिधर के कबहुँ बयारि लगी नहिं ताती।
तब की कथा कहा कहौं, ऊधो, जब हम बेनुनाद सुनि जाती।।
हरि के लाड गनति नहिं काहू निसिदिन सुदिन रासरसमाती।
प्राननाथ तुम कब धौं मिलोगे सूरदास प्रभु बालसँघाती।।

- 'स्याम स्याम' – यमक अलंकार

राग सारंग

अपनी सी कठिन करत मन निसिदिन।
कहि कहि कथा, मधुप, समुझावति तदपि न रहत नंदनंदन बिन।।
बरजत श्रवन सँदेस, नयन जल, मुख बतियाँ कछु और चलावत।
बहुत भांति चित धरत निठुरता सब तजि और यहै जिय आवत।।
कोट स्वर्ग सम सुख अनुमानत हरि-समीप समता नहिं पावत।
थकित सिंधु-नौका के खग ज्यों फिरि फिरि फेर वहै गुन गावत।।
जे बासना न बिदरत अंतर तेइ-तेइ अधिक अनूअर दाहत।
सूरदास परिहरि न सकत तन बारक बहुरि मिल्यो है चाहत।।

- अलंकार – अनुप्रास, उपमा, उदाहरण, पुनरुक्तिप्रकाश

राग बिलावल

काहे को रोकत मारग सूधो!
सुनहु मधुप! निर्गुन-कंटक तें राजपंथ क्यों रूधो?
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामघन जू धौं?
बेद पुरान सुमृति सब ढूँढो जुवतिन जोग कहूँ धौं?
ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधौ।।

- 'निर्गुन-कंटक तें राजपंथ' – रूपक, रूपकातिशयोक्ति अलंकार
- 'बेद पुरान सुमृति सब ढूँढो जुवतिन जोग कहूँ धौं? – वक्रोक्ति अलंकार

राग सारंग

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी।।
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी।

राग मलार

ब्रजजन सकल स्याम-ब्रतधारी।
बिन गोपाल और नहिं जानत आन कहैं व्यभिचारी।।
जोग मोट सिर बोझ आनि कैं, कत तुम घोष उतारी?
इतनी दूरि जाहु चलि कासी जहाँ बिकति है प्यारी।।
यह संदेश नहिं सुनै तिहारो, है मंडली अनन्य हमारी।
जो रसरीत करी हरि हमसौं सो कत जात बिसारी?
महामुक्ति होऊ नहिं बूझै, जदपि पदारथ चारी।
सूरदास स्वामी मनमोहन मूरति की बलिहारी।।

- प्यारी – महँगी (पंजाबी भाषा का शब्द)

राग धनाश्री

कहति कहा ऊधो सों बौरी।
जाको सुनत रहे हरि के ढिग स्यामसखा यह सो री!
हमको जोग सिखवन आयो, यह तेरे मन आवत?
कहा कहत री! मैं पत्यात री नहीं सुनी कहनावत?
करनी भली भलेई जानै, कपट कुटिल की खानि।
हरि को सखा नहीं री माई! यह मन निसचय जाति।।
कहाँ रास-रस कहाँ जोग-जप? इतना अंतर भाखत।
सूर सबै तुम कत भईं बौरी याकी पति जो राखत।।

- 'करनी भली भलेई जानै, कपट कुटिल की खानि' – लोकोक्ति का प्रयोग
- माई का अर्थ सखी है। (ब्रज भाषा का शब्द)

राग धनाश्री

प्रकृति जोई जाके अंग परी।
स्वाग-पूंछ कोटिक जा लागै सुधि न काहु करी॥
जैसे काग भच्छ नहिं छाडै जनमत जौन धरी।
धोये रंग जात कहु कैसे ज्यों कारी कमरी?
ज्यों अहि डसत उदर नहिं पूरत ऐसी धरनी धरी।
सूर होउ सो होउ सोच नहिं तैसे हैं एउ री॥

- 'स्वान-पूंछ कोटिक जा लागौ सुधि न काहु करी' – अर्थांतरन्यास के माध्यम से लोकप्रसिद्ध उक्ति का प्रयोग
- भच्छ-भक्ष्य (भक्ष्य का प्रयोग अभक्ष्य के अर्थ में हुआ है।)

तुलसीदास (रामचरितमानस-उत्तर काण्ड)

- उत्तरकाण्ड गोस्वामी तुलसीदास के महाकाव्य श्रीरामचरितमानस के सात काण्डों में अंतिम है।
- उत्तरकाण्ड की कथावस्तु के दो भाग हैं। आरंभ में मूल कथा है। राम अयोध्या पहुँचते हैं जहाँ उनका भव्य स्वागत होता है। वेद-स्तुति एवं शिव-स्तुति के साथ उनका राज्याभिषेक किया जाता है। वानरों को विदा किया जाता है। रामराज्य एक आदर्श राज्य के रूप में उपस्थित होता है।
- इसके बाद उत्तरकाण्ड में तुलसीदास का चिंतन-पक्ष उपस्थित हुआ है। यह कथा अपने युग की समस्याओं और मानव-जीवन की शाश्वत समस्याओं के समाधान से जुडती है।
- उत्तरकाण्ड के अंतिम भाग का हिंदी साहित्य में विशेष महत्व है क्योंकि इसमें तुलसी का भक्ति और ज्ञान संबंधी चिंतन विस्तार में अभिव्यक्त हुआ है।
- वस्तुतः तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड के उत्तर-भाग में भुशुण्डि-गरुड की कथा विशिष्ट उद्देश्य से रखी है। इस कथा के माध्यम से तुलसीदास ने ईश्वर के अवतार एवं उसकी लीला का मर्म, मानव-जन्म का महत्व, मानव का दुख, संत-असंत के लक्षण, पाप और पुण्य आदि पर विचार किया है। अपने युग की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कलियुग-वर्णन, शैव एवं वैष्णव मतों का समन्वय, निर्गुण-सगुण विवाद आदि प्रसंगों को इसमें शामिल किया है।

- हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहि सुनाए॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई॥
सुनत सकल जननीं उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाई॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए॥
दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगल मूला॥
भरि भरि हेम थाल भामिनी। गावत चलिं सिंधुरगामिनी॥
जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं॥
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई॥
अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥
दोहा- हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपानिकेत॥
बहुतक चढी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान॥ 3॥

- आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा॥ बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥
धाई धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया॥
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज॥
परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भए ठाढे। नव राजीव नयन जल बाढे॥

- छन्द- जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं। दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भैंटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे। गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥
दोहा- भेंटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकई हृदयँ बहुत सकुचानि॥